आधुनिकता और चण्डीगढ़ का तिलिस्म

पितृसत्ता, जाति और एक शहर की दास्तान

नवप्रीत कौर

उत्तर-औपनिवेशिक भारत के नियोजित शहरों में सबसे पहले चण्डीगढ़ बसाया गया था। 'ख़ूबसूरत शहर' की उपमा से विभूषित इस शहर की रचना नगरवाद के आधुनिकतावादी विमर्श की देन है। इसीलिए चण्डीगढ़ महज़ एक शहर न रह कर नेहरूवादी आधुनिकता का एक जीवंत नमूना बन गया है। इसे नेहरू के मानस-पुत्र की तरह भी देखा जाता है। बँटवारे के संताप से गुज़र रहे पंजाब की नयी राजधानी के रूप में विकसित और नयी दिल्ली के उत्तर में 388 किलोमीटर दूर स्थित चण्डीगढ़ के आधारभूत विचार के बारे में रवि कालिया का कहना है, 'इसका मक़सद था समाज-सुधार तथा इससे जुड़े हुए उद्देश्य हासिल करते हुए शहरी रूपरेखा और जीवन की पुन:संरचना कुछ इस तरह से करना कि प्रकृति, प्रौद्योगिकी और आर्थिक-सामाजिक श्रेणियों के बीच बेहतर और
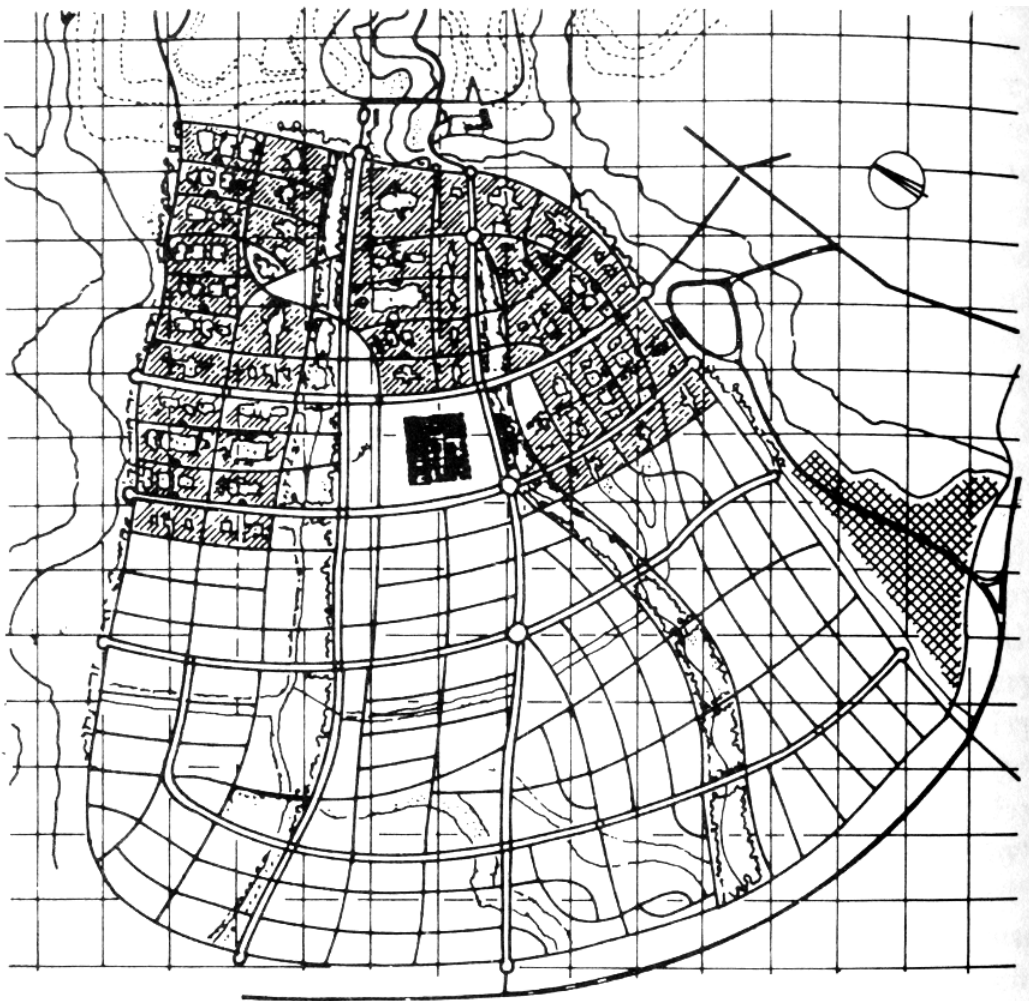
1952 में चण्डीगढ़ की रचना के लिए बनायी गयी फ्रांसीसी वास्तुकार ल कार्बूज़िए की कार्य-योजना का मानचित्र

सामंजस्यपूर्वक विकास हो। चण्डीगढ़ के संदर्भ में ये उद्देश्य उसके वास्तुकार ल कार्बूज़िए ने रेखांकित किये और नेहरू ने उस पर अपनी सहमति की मोहर लगाई। ये दोनों एक ऐसा शहर बनाने का सपना देख रहे थे जो दुनिया के लिए न सही लेकिन राष्ट्र के लिए तो शहरी नियोजन का आदर्श साबित हो ही सके,[1]

आज़ादी के बाद भारत में गाँधी को आधिकारिक तौर पर नवनिर्मित भारतीय राष्ट्र के पिता की उपाधि मिली। लेकिन भारतीय आधुनिकता के सफ़र पर ग़ौर करने से पता लगता है कि बड़े बाँध हों,

[1] रवि कालिया (1987), *चण्डीगढ़ : द मेकिंग ऑफ़ ऐन अरबन सिटी,* ऑक्सफ़र्ड युनिवर्सिटी प्रेस, नयी दिल्ली : 121.
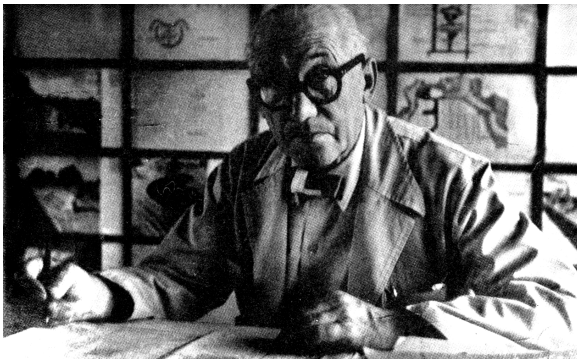
फ्रांसीसी वास्तुकार ल कार्बूज़िए

चण्डीगढ़ ... का मक़सद था समाज-सुधार तथा इससे जुड़े हुए उद्देश्य हासिल करते हुए शहरी रूपरेखा और जीवन की पुनःसंरचना कुछ इस तरह से करना कि प्रकृति, प्रौद्योगिकी और आर्थिक-सामाजिक श्रेणियों के बीच बेहतर और सामंजस्यपूर्वक विकास हो। चण्डीगढ़ के संदर्भ में ये उद्देश्य उसके वास्तुकार ल कार्बूज़िए ने रेखांकित किये और नेहरू ने उस पर अपनी सहमति की मोहर लगाई। ये दोनों एक ऐसा शहर बनाने का सपना देख रहे थे जो दुनिया के लिए न सही लेकिन राष्ट्र के लिए तो शहरी नियोजन का आदर्श साबित हो ही सके।

भारी उद्योगों की स्थापना हो या फिर नये शहरों के माध्यम से चली राष्ट्र-निर्माण की प्रक्रिया हो— सभी कुछ जवाहरलाल नेहरू के सपनों को धरती पर उतारने की कोशिशों का नतीजा था। ऐसे ही अपने एक स्वप्न-शिशु चण्डीगढ़ शहर के ज़रिये नेहरू एक 'नयी शुरुआत' करना चाहते थे। लेकिन जानबूझ कर परम्परा से हट कर डिज़ाइन किये गये इस 'आधुनिक' शहर का जन्म बिना नाभिनाल के हुआ, क्योंकि वह अपने अतीत से, अपने वर्तमान और अपने ही संवर्धन के स्रोतों से कटा हुआ था। सुनील खिलनानी के मुताबिक़ एक राष्ट्रीय परियोजना के रूप में चण्डीगढ़ के लिए जो जगह चुनी गयी थी, उसके बारे में नेहरू की मान्यता थी, 'चुना गया स्थल पुराने शहरों के बोझ से दबा हुआ नहीं है।' नेहरू का ख़याल था कि नया बनने वाला शहर 'अतीत की परम्पराओं के बंधन से मुक्त भारत की आज़ादी का प्रतीक ... राष्ट्र की भविष्य में आस्था की अभिव्यक्ति' बन जाएगा।[2] विरोधाभास यह था कि जिस शहर को भविष्य के भारत की अभिव्यक्ति की तरह देखा जा रहा था, वह उसी देश के अतीत की एक गहरी अवहेलना से पैदा हुआ था।

अतीतरूपी नाभिनाल के बिना एक 'नयी' शुरुआत करने का इरादा नेहरूवादी आधुनिकता में निहित परम्परा के प्रति एक गहरी नफ़रत की तरफ़ भी इशारा करता है। नेहरूवादी आधुनिकता ने 'आधुनिक' होने के चक्कर में वह सब कुछ ख़ारिज किया जो उसे परम्परागत, मैला, प्रदूषित और गंदा लगता था। जाति की संकल्पना से पूरी तरह से अलग रहना नेहरूवादी आधुनिकता के इस दृष्टिकोण का एक उदाहरण है। 'नये' राष्ट्र के प्रतीक के रूप में एक नया शहर बसाने की क़वायद भी अतीत और परम्परा दोनों को ख़ारिज करने की कोशिश थी। सुनील खिलनानी का विचार है, 'चण्डीगढ़ उस राष्ट्रवादी कला-दीर्घा का अंग था जिसमें संविधान और पंचवर्षीय योजनाएँ सजी हुई थीं। चण्डीगढ़ की रचना के पीछे वह बुनियादी संकेत निहित था जिसके ज़रिये आधुनिक विश्व में भारत ने अपनी दिशा और अपने स्थान का निर्धारण किया था,[3] चण्डीगढ़ शहर केवल इस मायने में

[2] सुनील खिलनानी (2001), *भारतनामा (द आइडिया ऑफ़ इण्डिया)*, अंग्रेज़ी से अनुवाद : अभय कुमार दुबे, राजकमल प्रकाशन, नयी दिल्ली : 144.

[3] वही : 145.

महत्त्वपूर्ण नहीं था कि उसकी रचना ल कार्बूज़िए के आधुनिकतावादी स्थापत्य के आधार पर की गयी थी। उसकी अहमियत इस बात में भी थी कि उसे एक ऐसे शहर के रूप में कल्पित किया गया था जिसके होने से उत्तर-औपनिवेशिक भारत एक प्रबोधित युग में प्रवेश कर पायेगा। एक ऐसा युग, जो अंग्रेज़ी राज की विरासत के तौर पर मिले शहरी जीवन के धुँधलके से बिल्कुल अलग होगा। अपनी बाक़ी बड़ी परियोजनाओं की तरह ही नेहरू ने इस शहर के निर्माण में व्यक्तिगत रुचि ली। न केवल वे इस शहर की नयी इमारतों का उद्घाटन करने यहाँ कई बार आये, बल्कि इस परियोजना की प्रगति जानने के लिए भी उन्होंने कई दौरे किये। उस दौरान अपने भाषणों में अक्सर वे चण्डीगढ़ को आधुनिक भारत का सर्वोत्तम शहर क़रार देते थे। यह अलग बात है कि उसी दौरान कई लोग इस शहर की परियोजना और डिज़ाइन की आलोचना भी कर रहे थे। इतना ही नहीं, इस परियोजना को उन ग्रामीणों के तीखे प्रतिरोध आंदोलनों का सामना भी करना पड़ रहा था, जिन्हें अपनी ज़मीन से उजाड़ कर यह शहर बसाया जा रहा था।

I

मार्च, 1955 में हाईकोर्ट की नयी इमारत का उद्घाटन करने नेहरू चण्डीगढ़ आये।[4] साथ ही वे पंजाब में निर्माणाधीन भाखड़ा नंगल बाँध की प्रगति देखने भी गये। इस समय तक चण्डीगढ़ की परियोजना ल कार्बूज़िए की डिज़ाइन बुक के पन्नों से बाहर निकल कर शिवालिक पहाड़ियों की तलहटी में पंजाब की विशाल समतल ज़मीन पर अपने पैर फैला चुकी थी।[5] एक बड़े जनसमूह को सम्बोधित करते हुए नेहरू ने न केवल चण्डीगढ़ की बल्कि भाखड़ा बाँध परियोजना की भी ख़ूब सराहना की।[6] इस क्षेत्र के सबसे बड़े अंग्रेज़ी अख़बार *द ट्रिब्यून* ने नेहरू के उस भाषण को, जहाँ उन्होंने न्याय के सम्पादन को वास्तुशिल्प के साथ जोड़ा था, कुछ इस तरह छापा :

> प्रधानमंत्री ने कहा कि वे अपने सामने खड़ी इस शानदार इमारत से बेहद प्रभावित हुए हैं। उनके अनुसार न्याय के सम्पादन के लिहाज़ से यह इमारत वैसी ही खुली दिखाई देती है जैसी कि इसे होना चाहिए। ऐसे कार्यों का सम्पादन किसी बंद दिखने वाली इमारत से नहीं होना चाहिए। न्याय का सम्पादन कोई गोपनीय कार्य नहीं, इसीलिए उच्च न्यायालय की इमारत भी खुली ही होनी चाहिए। वे इस बात से काफ़ी खुश थे कि हाईकोर्ट की नयी इमारत इसी तरह से बनाई गयी है। इसके लिए उन्होंने पंजाब तथा वहाँ के लोगों के साथ-साथ ल कार्बूज़िए का भी शुक्रिया अदा किया।[7]

नेहरू आकृति-विज्ञान पर आधारित संरचनाओं को केवल उनके नियोजन या डिज़ाइन के संदर्भ में ही नहीं बल्कि उनकी अमूर्त आवश्यकता के संदर्भ में भी देखते थे। उनके अनुसार आधुनिक वास्तुशिल्प तथा डिज़ाइन केवल इमारतें गढ़ने का ही काम नहीं करते, बल्कि भारतीय संविधान द्वारा प्रतिपादित न्याय तथा स्वतंत्रता के सिद्धांतों को चित्रित करने की क्षमता भी रखते हैं। नेहरू की इस समझ के अनुसार इमारतें सिर्फ़ मिट्टी-ईंट के बने ढाँचे नहीं बल्कि जीवंत वस्तुएँ थीं जिनके माध्यम से नवनिर्मित राष्ट्र की संस्थाएँ भारतीय संविधान में निहित आदर्शों की प्राप्ति के

---

[4] *द संडे ट्रिब्यून,* 20 मार्च, 1955.

[5] यह प्रकरण कश्मीरी लाल ज़ाकिर के उपन्यास *मेरा शहर अधूरा सा* से लिया गया है. इसमें ज़ाकिर चण्डीगढ़ शहर के बनने का काफ़ी तफ़सील से ज़िक्र करते हैं. देखें, कश्मीरी लाल ज़ाकिर (1996), *मेरा शहर अधूरा सा,* जनवाणी प्रकाशन, नयी दिल्ली.

[6] *द संडे ट्रिब्यून,* 20 मार्च, 1955.

[7] वही.

कश्मीरी लाल ज़ाकिर
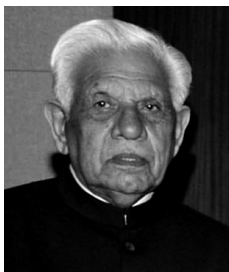
इस शहर के बहुत पुराने बाशिंदों में से एक कश्मीरी लाल ज़ाकिर उस दौर को याद करते हुए नंगला नामक विस्थापित गाँव के बाशिंदों पर तत्कालीन राज्य द्वारा बरपाई गयी हिंसा के बारे में बताते हैं। ज़ाकिर इन प्रदर्शनकारियों पर पुलिस द्वारा चलाई गयी गोलियों को याद करते हुए कहते हैं कि सरकार ने विरोध-प्रदर्शन कुचलने के लिए हथियारबंद पुलिस का इस्तेमाल किया। ज़ाकिर के उपन्यास *मेरा शहर अधूरा सा* में प्रदर्शनकारी ग्रामीणों पर राज्य के कहर का ज़िक्र किया गया है।

लिए कार्य करेंगी। कंकरीट की इन इमारतों में स्थापित किये जाने वाले संस्थान भारतीय राष्ट्र की उम्मीदों के मुताबिक थे जिनके द्वारा राज्य ने अपने नागरिकों से न्याय-सम्पादन का वायदा किया था।

लेकिन राष्ट्र-राज्य द्वारा किया जाने वाला न्याय का यह वायदा एक ऐसी बुनियाद पर खड़ा था जिसे आख़िर टूटना ही था। इसकी वजह यह थी कि न्याय-सम्पादन की यह अवधारणा उन बड़ी योजनाओं और परियोजनाओं पर आधारित थी जिनकी पूर्ति हज़ारों-लाखों लोगों के विस्थापन के बाद ही सम्भव हो सकी। इन योजनाओं से हुए विस्थापन ने लोगों की आजीविका और जीवन-शैली पर मारक प्रहार किया। इस शहर के बहुत पुराने बाशिंदों में से एक कश्मीरी लाल ज़ाकिर उस दौर को याद करते हुए नंगला नामक विस्थापित गाँव के बाशिंदों पर तत्कालीन राज्य द्वारा बरपाई गयी हिंसा के बारे में बताते हैं।[8] ज़ाकिर इन प्रदर्शनकारियों पर पुलिस द्वारा चलाई गयी गोलियों को याद करते हुए कहते हैं कि सरकार ने विरोध-प्रदर्शन कुचलने के लिए हथियारबंद पुलिस बल का इस्तेमाल किया।[9] ज़ाकिर के उपन्यास *मेरा शहर अधूरा सा* में प्रदर्शनकारी ग्रामीणों पर राज्य के कहर का ज़िक्र किया गया है।[10] इस उपन्यास में नये बन रहे शहर की तुलना एक नवजात शिशु से कुछ इस तरह की गयी है :

> यह कैसा नायाब बच्चा था! इसे ज़िंदगी में सिवाय सोते रहने के और कोई काम नहीं था। गाँव उजड़ रहे थे, घरों को गिराया जा रहा था और छतें टूट रही थीं। दीवारें टूट कर बिखर रही थीं और लोगों में इसे लेकर बेचैनी थी। लोग चिल्ला रहे थे और चारों तरफ़ चीख़-पुकार का माहौल था। वे अपने विस्थापन को लेकर सरकार के ख़िलाफ़ प्रदर्शन कर रहे थे। ख़ुद को संगठित कर वे सरकार के ख़िलाफ़ विद्रोह का नारा उठा रहे थे। उसी दौरान गोली भी चली। लोग मारे भी गये। लोगों पर प्रतिबंध भी लगाये गये। औरतें बेवा हो गयीं। मारे गये लोगों की आख़िरी रस्में भी की गयीं। मारे गये लोगों का मातम भी मनाया गया।[11]

शहर बनने की प्रक्रिया में विस्थापित हुए ग्रामीणों के संघर्ष के बारे में शर्मा व अन्य ने लिखा है कि इस शहर को बसाने के ख़िलाफ़ विस्थापितों द्वारा किये गये विरोध के तीन चरण थे।[12] पहले चरण में शहर बनने के ख़िलाफ़ सीधे और खुले तौर पर विरोध प्रदर्शन हुए।[13] दूसरे चरण का संघर्ष मुआवज़े की राशि ज़ारी करने के बारे में था जिसका वायदा सरकार ने लोगों से किया था।[14] संघर्ष के तीसरे

[8] कश्मीरी लाल ज़ाकिर (साहित्यकार और हरियाणा उर्दू अकादमी के चेयरमैन) के साथ 12 अगस्त, 2009 को हुए इंटरव्यू से.

[9] वही.

[10] *मेरा शहर अधूरा सा* की 'प्रस्तावना'.

[11] वही.

[12] शर्मा व अन्य (1999), *चण्डीगढ़ लाइफ़स्केप्स : ब्रीफ़ सोशल हिस्ट्री ऑफ़ ए प्लैंड सिटी,* चण्डीगढ़ प्रशासन, चण्डीगढ़ : 24.

[13] वही.

[14] वही.

चरण में अपने अधिकार राज्य से माँगने के लिए लोगों ने केवल विरोध प्रदर्शन ही नहीं किये बल्कि न्यायिक उपायों का सहारा भी लिया।[15] इस बात पर ग़ौर करना भी ज़रूरी है कि *द ट्रिब्यून* जैसे बड़े अख़बार ने चण्डीगढ़ बनने के दौरान नेहरू द्वारा किये गये दौरों को तो काफ़ी जगह दी लेकिन इस परियोजना के ख़िलाफ़ हो रहे विरोध प्रदर्शनों को कोई ख़ास तवज्जो नहीं दी। पचास और साठ के दशक में चण्डीगढ़ शहर की वजह से राज्य द्वारा विस्थापित किये गये किसानों की कहानी का यदि कोई लेखा-जोखा बचा है तो वह यहाँ के बड़े-बूढ़ों का मौखिक इतिहास ही है। राज्य के पूरे विमर्श ने, जिसके मुख्य प्रवक्ता जवाहरलाल नेहरू थे, इन विरोध प्रदर्शनों को राष्ट्र-निर्माण के शोरगुल में दरकिनार करना ही उचित समझा। राज्य के इस विमर्श में नये बन रहे शहर को 'वहाँ रहने वाले लोगों के आर्थिक व सामाजिक जीवन का प्रतिनिधित्व' करते हुए ही दर्शाया गया :

> कुछ लोगों ने चण्डीगढ़ तथा उसकी इमारतों की आलोचना की है। लेकिन प्रधानमंत्री के अनुसार चण्डीगढ़ इस राज्य के लोगों का तथा नये जीवन का प्रतीक है। किसी भी शहर के घर व इमारतें वहाँ रहने वाले बाशिंदों की आर्थिक व सामाजिक ज़िंदगी दर्शाती हैं। इसीलिए उन्होंने बताया कि चण्डीगढ़ बनते हुए देखकर उनके मन को काफ़ी संतोष मिलता है। यह पंजाबियों द्वारा जीवन में की जा रही नयी शुरुआत तथा उनकी प्रगति का प्रतीक भी है।[16]

यह शहर न केवल औपनिवेशिक अतीत के ज़ख़्मों को भरने की एक प्रतीकात्मक जगह बन गया, बल्कि देश के बँटवारे की भयावह सच्चाई से उबर कर एक नयी शुरुआत करने का प्रतीक भी बना। अपने चण्डीगढ़ दौरे में नेहरू ने इन पहलुओं पर सीधे-सीधे टिप्पणी की :

> प्रधानमंत्री ने कहा कि आज चण्डीगढ़ देख कर व उसके निर्माण की रफ़्तार के बारे में जान कर उन्हें काफ़ी ख़ुशी और संतोष हुआ। वे इसके आलोचक नहीं हो सकते और न ही ख़ुद को ऐसा करने में सक्षम मानते हैं। वे इस धारणा के साथ वापिस जाएँगे कि चण्डीगढ़ एक ऐसा शहर है जो नये जीवन का प्रतीक है और जिससे हमें सीख भी लेनी चाहिए। अंग्रेज़ अपने शासनकाल के दौरान स्थापत्य का एक ख़ास नमूना प्रचलन में लाये जो कि न तो ब्रिटिश था और न ही भारतीय। हमारे यहाँ भी कुछ लोग शायद इसी नमूने को पसंद करने लगे। अब यही लोग गृह-निर्माण की उन नयी योजनाओं व नये डिज़ाइनों की सराहना नहीं कर पा रहे हैं जो नये मानस व जीवन के प्रतीक हैं। लेकिन उन्हें इस बात का पूरा यक़ीन था कि लोग बहुत जल्दी ही इन योजनाओं तथा इमारतों को सराहने लगेंगे। उनके अनुसार इसकी वजह यह थी कि *जब लोगों ने समाज के समाजवादी ढाँचे के निर्माण की कल्पना की थी तो यह नया शहर भी उसी नयी भावना तथा अतीत से चले आ रहे भेदभावों को मिटाने का भी प्रतीक है* (ज़ोर मेरा)। यहाँ की इमारतें बदलते वक़्त की द्योतक हैं।[17]

इस कथन से ज़ाहिर है कि नेहरू शहर की योजना के विरोध के बारे में जानते थे। लेकिन उन्होंने इसका कारण यह बताया कि लोक-दृष्टि सौंदर्य-बोध की कमी की शिकार है। उनका विचार था कि भारतीय लोक-दृष्टि 'ब्रिटिश मॉडल की इमारतों' की आदी हो चुकी है। इसी वजह से उसमें आधुनिक डिज़ाइन व भवन-कला को सराहने की क्षमता नहीं है। दूसरे, नेहरू ने कांग्रेस पार्टी को मिले वोटों का तात्पर्य 'नागरिकों' द्वारा नेहरूवादी आधुनिकता को दी गयी सहमति के रूप में ग्रहण किया था। कांग्रेस की चुनावी जीत को उत्तर-औपनिवेशिक राज्य में आधुनिकता लाने के इरादे से शुरू की गयी बड़ी परियोजनाओं के प्रति लोगों की पूर्ण सहमति मान लिया गया था। इसी चक्कर में राज्य-व्यवस्था ने विरोध के उन सभी स्वरों को ख़ारिज कर दिया जो अलग-अलग तरह से आधुनिकता के इस बड़े प्रोजेक्ट पर सवालिया निशान लगा रहे थे। ये विरोधी स्वर उन सभी विस्थापितों के थे

---

[15] वही.

[16] *द संडे ट्रिब्यून,* अम्बाला, 20 मार्च, 1955.

[17] *द संडे ट्रिब्यून,* वही : 7
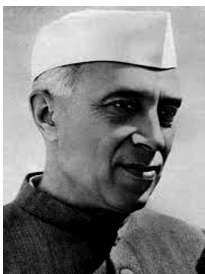
नेहरू शहर की योजना के विरोध के बारे में जानते थे। लेकिन उन्होंने इसका कारण यह बताया कि लोक-दृष्टि सौंदर्य-बोध की कमी की शिकार है। उनका विचार था कि भारतीय लोक-दृष्टि 'ब्रिटिश मॉडल की इमारतों' की आदी हो चुकी है। इसी वजह से उसमें आधुनिक डिज़ाइन व भवन-कला को सराहने की क्षमता नहीं है। दूसरे, नेहरू ने कांग्रेस पार्टी को मिले वोटों का तात्पर्य 'नागरिकों' द्वारा नेहरूवादी आधुनिकता को दी गयी सहमति के रूप में ग्रहण किया था।

जिनके खेत-खलिहानों को ज़बरदस्ती अधिगृहीत कर राज्य ने देश के विभिन्न भागों में ऐसी योजनाएँ तथा परियोजनाएँ शुरू की थीं।

चण्डीगढ़ की वजह से ग्रामीण समाज में बहुत बड़े स्तर पर हुए विस्थापन के मायने शायद समाज के अलग-अलग तबक़ों के लिए अलग-अलग थे। भूमि-अधिग्रहण का मालिकाना हक़ रखने वाली मज़बूत जातियों, जैसे कि जाटों इत्यादि ने, इसका डट कर विरोध किया। लेकिन भूमिहीन जातियों ने नये बन रहे शहर से नये रोज़गार पाने और अपने हालात सुधरने की उम्मीद लगाई। इस नियोजित शहर के सामाजिक इतिहास पर लिखी अपनी किताब में शर्मा व अन्य इसका ज़िक्र एक छोटी सी पाद-टिप्पणी में करते हैं, 'ऐसे मौक़ों पर जातिगत तनाव ने भी अपनी भूमिका अदा की। मलोया गाँव के व्यापारी चमनलाल याद करते हैं कि पिरथी सिंह आज़ाद नामक व्यक्ति ने गाँव वालों को यह समझाने की कोशिश की कि नये बन रहे शहर में उन्हें भी नौकरियाँ तथा घर मिलने की संभावना है। लेकिन ऊँची जाति के जाटों ने उसकी इस बात का मज़ाक़ उड़ाया। उनके अनुसार उस जैसे चमार में इस स्थिति में अपना भला-बुरा पहचानने की शायद क्षमता ही नहीं थी।'[18] चमार जाति के पिरथी सिंह आज़ाद ही शायद अकेले ग्रामीण नहीं थे जिन्होंने नये बन रहे शहर को उम्मीद भरी नज़रों से देखा। लेकिन जाति-उत्पीड़न की बेड़ियों से जकड़े ग्रामीण उत्तर भारत में हर दिन 'निम्न-जाति' होने का संताप झेलते इन देहातियों की उम्मीद के कारण नेहरू द्वारा शहर से की गयी उम्मीदों के कारणों से काफ़ी अलग थे।

दरअसल, यह शहर लोगों की स्थानीय ज़रूरतों से कटा हुआ था। विचार तथा संरचना, दोनों ही स्तरों पर यह सीधे-सीधे पश्चिम से आयातित था। शर्मा व अन्य के अनुसार, 'यह जानना काफ़ी रुचिकर है कि वे सभी लोग जिन्होंने चण्डीगढ़ की परिकल्पना की, चाहे वे राजनेता और प्रशासनिक अधिकारी हों या फिर वास्तुशिल्पी, सभी ने ही नगर-परियोजना तथा भवन-कला की भारतीय परम्पराओं की पूरी तरह से अनदेखी की। चण्डीगढ़ डिज़ाइन करने के लिए चुने गये वास्तुशिल्पी, ख़ास कर ल कार्बूज़िए, सत्ता तथा नियंत्रण के मुद्दों के बारे में ज़रूरत से ज़्यादा चिंतित थे। इसमें मन का मनुष्य पर नियंत्रण, मनुष्य का वातावरण पर नियंत्रण तथा सरकार व इसके तंत्र का समाज पर नियंत्रण शामिल था। नियंत्रण की यह भाषा, जो कार्बूज़िए ने चुनी, ख़ास तरह की युरोपीय भाषा थी। उसमें स्थानीय विचारों, रुचियों तथा अभिलाषाओं के साथ संवाद की कोई गुंजाइश नहीं थी। ल कार्बूज़िए के असल ग्राहक तो नेहरू थे जो कि ख़ुद पाश्चात्य शिक्षा प्रणाली एवं बौद्धिक परम्परा की उपज थे। भारतीय समाज के बारे में समझ तो अधपकी थी ही, पंजाबी समाज के बारे में कार्बूज़िए की समझ न के बराबर ही थी। स्थानीय समाज के साथ जहाँ तक उनके व्यक्तिगत संपर्क की बात है तो वे एक साल में केवल दो महीने के लिए ही चण्डीगढ़ आते थे। यह सिलसिला तीन साल तक चलता रहा।'[19]

---

[18] शर्मा व अन्य : 27.

[19] वही : 17-18.

भारत के भविष्य की स्वर्ग–नगरी के रूप में कल्पित इस शहर की कथाएँ ब्रिटेन जैसे दूर–दराज़ के देशों तक भी पहुँचीं। इनसे प्रभावित होकर एक ब्रिटिश यात्री ने 1950 के दशक में महाराष्ट्र के सतारा से चण्डीगढ़ तक साइकिल यात्रा भी कर डाली। हेरल्ड एल्विन नामक यह यात्री इसका ज़िक्र कुछ इस तरह से करता है :

> मैं कोई स्वर्ग नहीं देख पा रहा हूँ और न ही कोई शहर। केवल एक रास्ता दिखाई पड़ता है जो किसी ऐसी जगह की ओर ले जाता है जहाँ कोई बहुत बड़ा कार्य सम्पादित किया जा रहा है। बिल्कुल वैसे ही जैसे चींटियों के बनाये बड़े मिट्टी के ढेलों के बाहर का दृश्य होता है। कारें, ट्रैक्टर, बसें— ये सब बिना घरों की गलियों में दौड़ते हुए बिंदुओं जैसे प्रतीत होते हैं। एक–दो मील आगे चल कर वही जगह आ जाती है जहाँ यह शहर खड़ा होगा हालाँकि अभी यहाँ समतल खेत ही दिखाई देते हैं। यही वह जगह है जहाँ ल कार्बूज़िए, फ्राई, जेन ड्रू और जॉनरेट हमारे लिए हमारा आधुनिक वास्तुशिल्प का मक्का खड़ा करेंगे। यह बनना शुरू भी हो गया है। इसकी योजना पूरी तरह से तैयार है और इसके छब्बीसवें अंश का निर्माण भी हो गया है।[20]

इस यात्रा–वृत्तांत के लेखक ने एक शाम आर्किटेक्ट दम्पति जेन ड्रू व मैक्सवेल फ्राइ और जॉनरेट के साथ गुज़ारी। ल कार्बूज़िए के अलावा ये तीनों वास्तुशिल्पी भी शहर को डिज़ाइन कर रहे थे। इस मुलाक़ात का ज़िक्र एल्विन ने अपने यात्रा–वृत्तांत में कुछ इस तरह किया :

> मैंने कहा : 'शायद यह बात नज़रअंदाज़ नहीं की जा सकती कि अमीरों व गरीबों के लिए एक शहर बाक़ायदा डिज़ाइन करना काफ़ी भयावह लगता है। आप एक घर लेना चाहते हैं और आपसे आपकी आमदनी पूछी जाती है। फिर उसी हिसाब से आपको तेरह में से किसी एक श्रेणी का घर दिया जाता है। मसलन डेढ़ लाख रुपये की कीमत के सभी घर उत्तर में मिलेंगे और चपरासियों के लिए बने 3,250 रुपये के घर दक्षिण में स्थित होंगे। एक सेक्टर में ज़्यादा से ज़्यादा तीन या चार ऐसी श्रेणियों के लिए घर बसाये गये हैं। क्या यह बात काफ़ी अजीब नहीं है कि इस शहर में सभी तेरह श्रेणियों के घर एक ही साथ एक ही जगह नहीं बनाये गये।'
>
> जवाब : 'हमें भी इस बात ने लगातार काफ़ी परेशान किया है। लेकिन क्या किया जा सकता है ? अमीर और ग़रीब दोनों एक साथ रहना कभी पसंद नहीं करेंगे।'
>
> क्या वास्तव में ग़रीब और अमीर एक साथ रहना पसंद नहीं करेंगे ? पोम्पी में भी तो उन्हें साथ–साथ बसाया गया था। निश्चित तौर पर कुछ हद तक वे ऑक्सफ़र्ड स्ट्रीट में भी साथ–साथ बसे थे। कई और जगहों पर भी ऐसा ही है। शायद इस समस्या का कोई हल नहीं, लेकिन अगर दूसरे शहरों के इलाक़े अमीरों और ग़रीबों के हिसाब से आबाद हुए तो यह महज़ एक इत्तेफ़ाक़ या फिर जम्हूरी इत्तेफ़ाक़ रहा होगा। कितना भयावह है कि एक शहर की योजना इस तरह भी बनाई जा सकती है।[21]

आधुनिक वास्तुशिल्प पर आधारित इस शहर में स्पेस का पृथककरण काफ़ी हद तक वर्ग–आधारित भी था। एल्विन अपने वृत्तांत में बताते हैं कि शहर की योजना ही कुछ इस तरह से बनाई गयी थी जिससे वह वर्ग के आधार पर बँट जाता था। इसका एक बड़ा उदाहरण शहर को दो भागों में बाँटने वाली रेखा है, जो 'मध्यमार्ग' के नाम से प्रचलित है। मध्यमार्ग एक सड़क नहीं है, बल्कि शहर के उत्तरी भाग के सम्भ्रांत सेक्टरों को इसके दक्षिण में बसे मध्य तथा निम्न–मध्यवर्गीय सेक्टरों में बाँटती हुई एक लक्ष्मण रेखा है।

---

[20] हेरल्ड एल्विन (1957), *द राइड टू चण्डीगढ़*, मैकमिलन, न्यूयॉर्क : 319.

[21] वही : 327.

II
एक शहर और एक महबूबा : रोमांच का शहर व शहर का रोमांस

कश्मीरी लाल ज़ाकिर का 1978 में लिखा गया यह उपन्यास[22] हरियाणा के एक गाँव से भाग कर चण्डीगढ़ आये एक रिक्शा चालक के प्रेम-प्रसंग की कहानी है। उपन्यास के प्राक्कथन में लेखक ने विस्थापित होने से पहले के दिनों के ग्रामीण जीवन की मार्मिक तस्वीर खींची है :

> यह कहानी उस दौर की है जब इस शहर को इसका कार्बूज़िए नहीं मिला था। आज जहाँ लम्बी-चौड़ी सड़कें, ख़ूबसूरत इमारतें, थियेटर, सिनेमा घर तथा ज़िंदगी से लबालब बाज़ार दिखाई पड़ते हैं, ठीक उसी जगह पर एक ज़माने में बहुत से छोटे-छोटे गाँव बसा करते थे। फ़सलों से भरे खेतों और आम के बड़े-बड़े बग़ीचों के बीच गाँव के बाशिंदे अपनी ज़िंदगी सुकून से गुज़ारते थे। जिस ज़मीन ने एक लम्बे अर्से से उन्हें अपनी गोद में पनाह दी, वे उससे मुहब्बत करते थे। फिर ये गाँव उजड़ गये। गाँव की गलियाँ वीरान हो गयीं, शाम ढलते ही, आमों के पेड़ उदास दिखने लगे। दूर तक फैले हुए ज़मीन के खुले मैदानों पर एक नये शहर का नक़्शा उभरने लगा। धीरे-धीरे पुराने गाँव के खँडहरों की परछाइयों से एक नये शहर का अक़्स उभर रहा था।
>
> पूरी दुनिया को यह ख़बर हो गयी कि देश के पंजाब नामक हरे-भरे व ख़ुशहाल प्रदेश में एक अति-आधुनिक शहर का निर्माण होने जा रहा है। धीरे-धीरे इस शहर का नाम सब की जुबाँ पर चढ़ने लगा।[23]

उपन्यास में केवल विस्थापन के शिकार ग्रामीण जीवन का ही ज़िक्र नहीं है, बल्कि बेघर रिक्शा चालक के जीवन के इर्द-गिर्द झुग्गी बस्ती भी भौतिक और अवधारणात्मक रूप में विद्यमान है। चण्डीगढ़ का इस्तेमाल केवल उपन्यास को एक स्थानिकता देने के लिए ही नहीं किया गया है, बल्कि पूरे कथानक की विषय-वस्तु का केंद्र बिंदु भी है। उपन्यासकार ने प्राक्कथन में इस बारे में बाक़ायदा ज़िक्र भी किया है।

> मेरे उपन्यास में धड़कता हुआ यह शहर जीवन-रहित नहीं। शहर अपने आप में एक पूरा चरित्र है जिससे प्रेम किया जा सकता है और कभी-कभी नफ़रत भी ... यह शहर कोई बड़े दिल का शहर नहीं... अलग-अलग लोगों की इस शहर के बारे में अलग-अलग राय है। इस शहर के बारे में बहुत आम और मूल विचार प्रचलित है कि यह सरकारी मुलाज़िमों का शहर है। सख़्त, रूखा, बेजान और बेयक़ीन। शायद यही वजह है कि यह शहर अपने मेहमानों का खुले दिल से स्वागत नहीं कर सकता... इस शहर में दूसरों को अपनी ओर खींचने की क्षमता तो है लेकिन यह उन्हें ख़ुद का हिस्सा नहीं बना पाता, इस शहर की सबसे बड़ी त्रासदी यही है। यह शहर एक ख़ूबसूरत महबूबा तो है, लेकिन इसमें इतना यक़ीन व चाहत नहीं कि ख़ुद किसी को सुपुर्द कर पाये।[24]

राष्ट्र-राज्य के इस स्वप्न-शहर में यहाँ के बाशिंदों को रोज़मर्रा की ज़िंदगी के दौरान अलग-अलग तरह के मोहभंग हुए। शहर को करीब से देखने और जीने के बाद यहाँ आये प्रवासियों का तिलिस्म ख़त्म हो जाता है। शहर के सपने का इस तरह भंग होना राष्ट्र के जीवन के लिए गहरे अभिप्रायों की तरफ़ इशारा करता है। दरअसल, यह मोहभंग राष्ट्र की दंतकथा भी विखण्डित करता है। उपन्यास का प्रमुख किरदार हीरा भी शहर से मोहभंग और क्षति के एहसास से कई बार गुज़रता है। सबसे पहले ऐसा तब होता है जब वह गाँव से भाग कर अपने सपनों के इस जादुई शहर में पहला

---

[22] उपन्यास के बारे में बातचीत के दौरान कश्मीरी लाल ज़ाकिर ने बताया कि उनका यह उपन्यास दरअसल पूरी तरह से काल्पनिक नहीं है. उपन्यास लिखने के दौरान उन्होंने कुछ महीने हरियाणा के किसी गाँव से भाग कर आये एक नवयुवक रिक्शा चालक के साथ शहर की दुकानों के बरामदे में चाय पीते और गपशप करते हुए गुज़ारे थे : 12 अगस्त वाले इंटरव्यू से.

[23] कश्मीरी लाल ज़ाकिर (1980), *एक शहर, एक महबूबा,* स्टार पब्लिकेशन, नयी दिल्ली : 2.

[24] वही : 4.

क़दम रखता है। इस शहर के बारे में हीरा ने बहुत से लोगों से बड़े आख्यान सुने थे। लेकिन शहर से पहली मुलाक़ात उसके अंदर भय और परायेपन की भावना पैदा करती है :

> जब हीरा शहर जाने वाली बस से चण्डीगढ़ पहुँचा, तब रात के तक़रीबन दस बजे रहे थे, और यह आख़िरी बस थी। एक सुनसान बस स्टैण्ड पर उतरने के बाद कुछ यात्रियों ने अपने पते-ठिकानों पर पहुँचने के लिए रिक्शा लिया और कई पैदल ही चल पड़े। हीरा अकेले ही इस सुनसान बस स्टैण्ड पर खड़ा रहा।
>
> बस स्टैण्ड की विशालकाय, लेकिन अधूरी बनी इमारत उसे काफ़ी भयावह लगी। डर के मारे उसने चारों ओर नज़र दौड़ाई और फिर बस स्टैण्ड से बाहर निकल आया।[25]

सिर्फ़ हीरा ने ही शहर के स्थापत्य से भय महसूस नहीं किया। शहर के हाईकोर्ट की इमारत का उद्‌घाटन करने आये नेहरू को भी यह लगा था कि जैसे हाईकोर्ट की इमारत उन पर छा गयी हो। शहर में जीवन बिताने के अपने सपने से हीरा को घिन आयी।

कुछ दिनों तक बाहर रहने के बाद हीरा ने एक आर्मी अफ़सर के गैराज़ में रहना शुरू कर दिया। उसका काम उनकी किशोर पुत्री चन्नी को रिक्शे से स्कूल ले जाना और वापिस लाना था। चन्नी के पहल करने पर हिचकिचाते हुए हीरा का उससे एक बहुत छोटा प्रेम-प्रसंग शुरू हो जाता है। इस प्रेम-प्रसंग का जल्दी अंत हो गया जब इसके बारे में पता चलने पर हीरा को पीट कर वहाँ से निकाल दिया गया। बहुत सालों बाद हीरा एक सड़क हादसे में घायल चन्नी को बचाने के लिए उसके पिता के अनुरोध पर अपना ख़ून देता है। उपन्यास के अंत में हीरा हर उस अवमानना से आहत है जो उसे इस शहर में झेलनी पड़ी।

> उसकी गलतियों का दूसरा हिस्सा यह भी था कि उसने इस बड़े, दूर तक फैले हुए, नियोजित व अति-आधुनिक शहर के एक ख़ूबसूरत स्त्री के रूप में सिमट जाने की तमन्ना की थी। एक ऐसी औरत जो कि उसकी प्रेमिका होगी। यह शहर जो दिन-ब-दिन फैलता जा रहा है एक छोटा सा बिंदु बन जाएगा या फिर होंठों का एक कोना या गाल पर पड़ा छोटा सा गड्‌ढा, बालों की एक ख़ूबसूरत लट या फिर आँखों का एक रहस्यमय इशारा।
>
> उन अनदेखे और अनजाने बिंदुओं जैसा जिनकी परिभाषा वह अपनी ज्यामिति की किताबों में पढ़ता था। उसकी गलती सिर्फ़ यह थी कि उसने अपनी महबूबा में समा जाने की ख़्वाहिश की थी।[26]

उपन्यास के अन्त में नायक जब शहर में अपने जीवन की ओर मुड़ कर वापिस देखता है तो पाता है कि उसके भीतर की गहन स्वैर-कल्पना केवल अपनी प्रेमिका चन्नी के लिए ही नहीं थी, बल्कि इस शहर के लिए भी थी। वह शहर जिसने उसे हमेशा अपनी ओर खींचा और अपने तिलिस्म में बाँधे रखा। लेकिन, साथ ही वही शहर बहुत रहस्यमय ढंग से उसकी पहुँच से बाहर भी रहा। शहर हीरा को अपने ऊपर किसी भी तरह का अधिकार नहीं देता। उसका एक बेघर रिक्शा-चालक होना शहर पर उसके किसी भी तरह के हक़ होने के दावे को ख़ारिज करने का आधार बन जाता है। शहर का उसकी पहुँच में होना इस बात पर निर्भर करता है कि 'नागरिकता की कुछ दूसरी शर्तें'[27] पूरी की जा सकें। हीरा के लिए ये शर्तें पूरी करना असम्भव था। हालाँकि ऐसा नहीं था कि हीरा को ही शहर की ज़रूरत हो। शहर को भी अपनी ज़िंदगी चलाने के लिए हीरा तथा उस जैसे लाखों श्रमिकों की आवश्यकता थी। इस दूसरे पहलू को इस उपन्यास में तो काफ़ी अच्छे से रेखांकित किया गया है, लेकिन इस हक़ीक़त को हमेशा ही राज्य ने चण्डीगढ़ शहर और इसकी प्रचलित कहानियों से परे रखा।

---

[25] वही.

[26] वही.

[27] आदित्य निगम इन्हें 'सभ्य' होने के मानकों की संज्ञा देते हैं जो शहर में 'प्रवेश' पाने की एक पूर्व शर्त होती है. देखें, आदित्य निगम (2002), 'थियेटर ऑफ़ द अरबन : द स्ट्रेंज केस ऑफ़ मंकीमैन', *सराय रीडर 02,* द सिटीज़ ऑफ़ ऐवरी डे लाइफ़, सराय : द न्यू मीडिया इनीशिएटिव, दिल्ली : 29.

चण्डीगढ़, नगरवादी आधुनिकता का सौंदर्यशास्त्र और भिक्षावृत्ति

चण्डीगढ़ से संबंधित प्रचलित विमर्श में उसकी हैसियत 'ख़ूबसूरत शहर' की बनी रही, यहाँ की झुग्गी-बस्तियों, यहाँ रहने वाले श्रमिकों (जैसे कि रिक्शाचालकों व शहर के उच्च व मध्यवर्गीय घरों में काम करने वाले घरेलू कामगारों को) 'गंदा' या 'मैला' मान कर शहर की प्रचलित कहानियों व बिम्बों से दूर ही रखा गया। इन लोगों को अदृश्य बनाये रखने का एक कारण शोषित वर्ग के वजूद को उभरने में निहित अंदेशों से जुड़ा है। निम्न-वर्गीय मज़दूर की देह शहर द्वारा किये गये आर्थिक व अनुभूति आधारित शोषण का केंद्र भी बनती है। शहर की अर्थव्यवस्था के पहियों को चालू रखने के लिए हीरा के ख़ून-पसीने की ज़रूरत पड़ती है। सड़क हादसे में घायल उसकी पूर्व-प्रेमिका को बचाने के लिए उसके ख़ून का इस्तेमाल उसकी दैहिक व अनुभूति आधारित दुर्बलताओं का द्योतक है जिससे उसकी देह को गुज़रना पड़ता है। हीरा की देह उपन्यास में एक ऐसे मुकाम की तरह उभरती है जो शहर द्वारा अपनाये जाने वाले विभिन्न प्रकार के हथकण्डों के लिए हमेशा आसानी से उपलब्ध रहती है, लेकिन जिसे अपनाने के लिए कोई तैयार नहीं होता। शहर की अपनी प्रेमिका के रूप में कल्पना ही इस देह द्वारा अपने बेजा इस्तेमाल से उबरने का एक ज़रिया बन जाती है। शहर के भौतिक रूप को प्रेमिका की देह मानने की कल्पना, दरअसल शहर की शारीरिकता को बहुत निकटता से महसूस करने की बाहरी ख़्वाहिश को भी व्यक्त करती है। इसके साथ ही शहर में समा जाने की हीरा की ख़्वाहिश को विद्रोह की दबी हुई ख़्वाहिश के रूप में भी देखा जा सकता है। ख़ासकर तब, जब शहर की बुनियाद ही बहिर्वेशन की शर्तों पर रखी गयी हो।

III
उत्तर-औपनिवेशिक दौर में प्रेम, विवाह और परिवार

आलेख के इस भाग में हम चर्चा करेंगे कि नये राष्ट्र के 'आधुनिक' नागरिक होने के विचार को किस प्रकार परिवार तथा विवाह जैसी संस्थाओं में अहम तब्दीलियों द्वारा नये तरह से समझा-समझाया गया है। इस प्रक्रिया को चण्डीगढ़ शहर के निर्माण की पृष्ठभूमि में लिखे गये एक अंग्रेज़ी उपन्यास *नेशन ऑफ़ फ़ूल्ज़* द्वारा समझने की कोशिश की जाएगी।[28]

यह उपन्यास भारतीय राष्ट्र के जीवन के उन ऐतिहासिक पलों को समेटता है जब उसके नागरिकों ने, नये राष्ट्र तथा नये शहर के बाशिंदे होने के परिणामस्वरूप अपने जीवन के कई महत्त्वपूर्ण पहलुओं में कुछ ऐसे बदलाव किये जो न केवल उनके 'आधुनिक' होने के प्रतीक थे बल्कि जो राष्ट्र के 'आधुनिक युग में क़दम रखने' के लिए भी ज़रूरी थे। यह उपन्यास, शहर बनने की प्रक्रिया के साथ-साथ एक ऐसे परिवार की जीवन-शैली में बदलाव की कहानी रेखांकित करता है जो बँटवारे के

[28] बलराज खन्ना (1984), *नेशन ऑफ़ फूल्ज़ : सीन्स फ़्रॉम इंडियन लाइफ़,* माइकल जोजफ़, लंदन.

कारण विस्थापित होकर अम्बाला कैम्प में बसा है। लेकिन इस परिवार की असल मंज़िल निर्माणाधीन चण्डीगढ़ है। बदलाव की इस उठा-पटक में इस परिवार का पुराने से 'नये' शहर में भौतिक पारगमन ही नहीं होता बल्कि जीवन जीने के 'नये' तौर-तरीक़ों की खोज भी इस बदलाव का एक हिस्सा है। यही प्रक्रिया व्यक्तिगत तथा सामाजिक स्तरों पर वैध/अवैध, शुद्ध/अशुद्ध, क़ानूनी/ग़ैरक़ानूनी आदि की सीमाओं को 'नये' शहर और 'नये' युग की ज़रूरतों के हिसाब से निर्धारित भी करती है। यदि 'पुराने' क़स्बे में सेक्शुअलिटी पर कई तरह के बंधन हैं, तो 'नया' शहर ऐसे खुलेपन का प्रतीक है जहाँ मध्यवर्गीय परिवार अपनी नौजवान पीढ़ी को कई पुरानी लक्ष्मण-रेखाएँ लाँघने की इजाज़त देता है। ऐसा बदलाव पितृसत्ता की गहरी आलोचना की वजह से नहीं बल्कि 'आधुनिक' होने की ज़रूरतों की वजह से होता है।

इस उपन्यास में ओमी नामक मुख्य किरदार की कहानी दरअसल एक छोटे क़स्बे में रहने वाले मैट्रिक फ़ेल किशोर की एक पढ़े-लिखे, अंग्रेज़ी बोलने वाले 'आधुनिक' युवक बनने तक के सफ़र की नुमाइंदगी करती है जो बहुत गहराई से शहर के बनने के सफ़र से जुड़ी हुई है। ओमी के इस सफ़र में दो प्रेम-संबंध और कुछ आकस्मिक क़िस्म की सेक्शुअल मुठभेड़ें भी शामिल हैं। इन संबंधों का ताना-बाना ओमी तथा उसके परिवार के एक 'नये' युग में प्रवेश करने की कहानी से जुड़ा हुआ है। यह युग उत्तर-औपनिवेशिक भारत के शहरी आधुनिकता में क़दम रखने का युग भी है।

ओमी चण्डीगढ़ के नज़दीक ही पंचकुला नामक छोटे से क़स्बे में रहने वाली एक शर्मीली तथा संकोची लड़की से प्रेम करता है। पंचकुला जैसे छोटे क़स्बे के घुटन भरे माहौल में इस युवा जोड़े की सेक्शुअल तथा रूमानी ख़्वाहिशें वहाँ की पितृसत्तात्मक मान्यताओं द्वारा तय होती हैं। ओमी न केवल गुड्डी से प्रेम करने की 'ग़लती' कर बैठता है, बल्कि गुड्डी के बड़े भाई के प्रभाव में जनसंघ की राजनीति में भी सक्रिय हो जाता है। यह 'ग़लती' इसलिए है क्योंकि ओमी के पिता खत्री एक पक्के कांग्रेसी होने के साथ-साथ नेहरू को अपना आदर्श मानते हैं। ओमी के इन अतिक्रमणों पर उसके परिवार द्वारा लगाम उसे बिना बताये एक सम्भ्रांत स्टेशन मास्टर की बेटी से उसकी शादी तय करके लगाई जाती है। अचानक होने वाली ये घटनाएँ ओमी को इस क़दर परेशान करती हैं कि वह घर छोड़ कर कहीं भाग जाना चाहता है। शादी से पहले चण्डीगढ़ के नामी-गिरामी कॉलेज से अंग्रेज़ी-माध्यम में पढ़ाई को ले कर उसके पिता और भावी ससुराल की दिलचस्पी का भेद अब उसके सामने खुलता है :

> 'ओह!' अब समझ में आया, कि ससुराल वालों ने वो महँगी मिठाइयाँ, कमीज़, और फाउंटेन पेन तोहफ़े में क्यों भेजा था। इसीलिए ... इसीलिए ही हमारी 'नयी राजधानी' में 'पक्के कॉलेज प्रोफ़ेसर' से अंग्रेज़ी की ट्यूशन पढ़ाने का इंतज़ाम भी किया गया।[29]

नये बन रहे शहर को लेकर इसके बाशिंदों में बेहद उत्साह था। उन्होंने बड़े चाव और ख़ुशी से अपनी ज़िंदगी में 'नयी' ज़रूरतों के हिसाब से कुछ 'नयी' चीज़ें जोड़ीं। अंग्रेज़ी सीखना और बोलना भी इन्हीं नयी ज़रूरतों में से एक था। पहले अक्सर लोग अंग्रेज़ी भाषा को सिर्फ़ पश्चिमी संस्कृति और उससे जुड़ी कई 'वाहियात' चीज़ों, जैसे अंग्रेज़ी फ़िल्में से जोड़कर देखते थे। नये बन रहे शहर में किसी का अंग्रेज़ी भाषा जानना सही मायनों में 'शहरी' होने की तस्दीक़ भी करता था। अपनी सगाई के बाद और गुड्डी के अपने जीवन से चले जाने के बाद ओमी को गहरे अकेलेपन का अहसास हुआ। इसे दूर करने के लिए अब उसका ज़्यादातर वक़्त आने वाली शहरी ज़िंदगी की पेशीनगोइयों और इसके बारे में ख़्वाब देखते हुए गुज़रता था :

---

[29] वही : 74.

> यह वक़्त अकेलेपन से भरा था। अब तो पिता का घर पर चक्कर लगना दिन-ब-दिन कम होता जा रहा था। इस बात का एक ही मतलब था। वह यह, कि वे अपने सपने के करीब पहुँच रहे होंगे। यह सपना चण्डीगढ़ का था। हमारी अपनी राजधानी, चण्डीगढ़! चण्डीगढ़!! हमारी राजधानी! उसी जगह पर मेरी ज़िंदगी की शुरुआत होगी। अभी तक जो कुछ भी हुआ, वह महज़ इत्तफ़ाक़ था, सिवाय एक-दो चीज़ों को छोड़ कर। गुड्डी उनमें से एक थी और दूसरी ... ? ओमी ने उसके बारे में कभी नहीं सोचा।[30]

पंचकुला जैसे छोटे से क़स्बे की रवायतें अगर गुड्डी को लड़की होने की वजह से कई तरह के बंधनों में बाँधती थीं, तो समाज ओमी से भी अपने द्वारा तय की हुई हदें न लाँघने की उम्मीद करता था। उससे यह उम्मीद तो की ही जाती है कि वह अपने पुरुषत्व को समाज की ज़रूरतों के मुताबिक़ दृढ़ता से घोषित करे। साथ ही यह भी समझे कि इस पुरुषत्व की भी सीमाएँ हैं जिनके अनुसार इसका इस्तेमाल केवल परिवार तथा राष्ट्र की सेवा में ही होना चाहिए। जैसे ही ओमी के पिता को इस बात की भनक लगती है कि वह परिवार तथा समाज की इन तयशुदा सीमाओं को लाँघ रहा है, वे अलग-अलग तरह से इस अवज्ञाकारी पुरुषत्व पर नकेल कसने की कोशिश करते हैं।

सेक्शुअल दमन के इस घुटन भरे माहौल में पुरुष नारी को उपभोग की एक वस्तु की तरह ही देखते हैं। इतना ही नहीं ख़ुद पुरुष-इयत्ता का भी बुरा हाल हो जाता है। यही वजह है कि एक निर्माणाधीन स्थल की मज़दूर औरतों का बेपर्दा होकर नहाना ओमी और उसके दोस्तों के लिए सेक्शुअल विलास की वजह बनता है। छोटे क़स्बे में सेक्शुअल इच्छाओं के लगातार कुचले जाने की वजह से पुरुष-यौनिकता के लिए इन मज़दूर औरतों की हैसियत एक वस्तु मात्र से अधिक नहीं होती। ओमी और उसके दोस्त नारी देह के प्रति अपनी दबी-कुचली उत्सुकता के चक्कर में इन मज़दूर औरतों के जीवन में स्नानगृह जैसी मूलभूत सुविधाओं के अभाव के आर्थिक पहलुओं से पूरी तरह अनजान और कटे रहते हैं। पुरुष और स्त्री की यह दमित सेक्सुअलिटी कई बार ऐसे रूप ले लेती है, जिन्हें आधुनिकता के प्रसंग में पथभ्रष्ट और दीवानावार माना गया है। लेकिन अपनी रोज़मर्रा की ज़िंदगी के तथाकथित धार्मिक दायरे में लोग इन 'असामान्य' व्यवहारों को सहज तरीक़े से जीते हैं। यह उनके धार्मिक और आध्यात्मिक जीवन का एक अभिन्न हिस्सा है। ऐसी ही एक घटना ओमी के साथ भी होती है।

> फलों के बाग़ से आधे मील की दूरी पर एक जाने-माने तीर्थ-स्थल के पास पहुँचा। यह एक अति-पुरातन चबूतरा था, जिसे मड़ी कहा जाता है। ऐसी मान्यता थी कि वहाँ किसी देवी या उसकी अस्थियों को दबाया गया था। यह छोटी-छोटी लाल ईंटों से बना आठ फुट ऊँचा पिरामिड था। जिन औरतों को संतान नहीं हो पाती थी वे यहाँ इसके लिए पूजा करती थीं? आदमियों का इस जगह आना या इसके आस-पास भटकना तक मना था। ऐसी मान्यता थी कि ऐसा करना भगवान के काम में बाधा डालने के बराबर है। इसी वजह से पुरुष वहाँ आते भी नहीं थे। ओमी को भी इस बात का पता था। जैसे ही उसे इस बात का एहसास हुआ कि वह कहाँ है, उसने जल्दी से वहाँ से हटने की कोशिश की। उसी वक़्त उसने वैसी ही आवाज़ें सुनीं जैसी कि उसे पिछली रात को नींद में सुनाई दी थीं। कोई कराह-सा रहा था। वह झाड़ी के पीछे छुप कर उन आवाज़ों को सुनने लगा। उसे पिरामिड के पास एक गहरी परछाईं दिखाई दी जो किसी इनसान की थी। उसकी धड़कनें रुक गयीं। उसे यह किसी भूत के होने जैसा लगा। उस इनसानी परछाईं ने मिट्टी का एक दिया जला कर पिरामिड के नीचे रख दिया। दिये की धीमी रोशनी में ओमी को पता चला कि वह एक औरत थी। उस औरत ने अपने कपड़े उतारे और पिरामिड के ठीक सामने धीरे-धीरे नाचने लगी।[31]

इसके बाद वह स्त्री धीरे-धीरे अंतरलीन तन्मयता जैसी स्थिति में चली जाती है जहाँ उसका नाचना तेज़ और दीवानावार हो जाता है। इसी दौरान उसके कहने पर ओमी और उस स्त्री में शारीरिक

---

[30] वही.

[31] वही.

संबंध क़ायम होता है। बाद में ओमी को मालूम हुआ कि उस दिन मड़ी पर उसे मिली वह स्त्री कोई और नहीं बल्कि उसके पड़ोस में रहने वाली रानी थी। रानी संतानहीन थी। वह जवान और बेहद ख़ूबसूरत थी। उसका पति अक्सर ही रोज़ रात को उसकी पिटाई करता था।

यह आकस्मिक सेक्शुअल प्रसंग ओमी के लिए इतना भयावह और डरावना था कि उसने इस बारे में दुबारा कभी न सोचने तक का निर्णय ले लिया। लेकिन एक महत्त्वपूर्ण सवाल यह भी है कि ओमी जैसे पुरुषों के लिए अपनी ही यौनिकता के कुछ आयाम इतने ख़तरनाक और डरावने क्यों हो जाते हैं कि उनसे किसी भी प्रकार का संवाद करने की बजाय वे या तो उन्हें अपने मन के किसी कोने में दबा देना चाहते हैं या फिर उन्हें अपने आप से पूरी तरह बाहरी मान कर मन से निकाल देना चाहते हैं। क्या रानी के साथ इस आकस्मिक यौन प्रकरण ने ओमी को अपनी यौनिकता के दमित पहलुओं के बरक्स लाकर खड़ा कर दिया? या फिर उसे इस बात का अहसास हुआ कि ख़तरा असल में एक 'बेलगाम' नारी यौनिकता से नहीं है, जैसा कि बचपन से ही समाज की रीति-रवायतों ने उसे सिखाया था, बल्कि उसे असल ख़तरा तो अपनी ही दमित यौनिकता के कुछ ऐसे दुर्दम्य आयामों से था जिनमें उसके पौरुष के पूरी तरह से संविलीन होने की गहरी सम्भावना छुपी थी। इस बात के बारे में उसके न सोचने की एक वज़ह शायद उसके भीतर विवाह की संस्था व उसकी नैतिकता पर सवालिया निशान लगने से भी जुड़ी थी।

ऊपर उठाए गये सवालों का दरअसल परम्परा और आधुनिकता के सवालों से एक गहरा रिश्ता है। आम तौर पर साहित्य व सिनेमा जैसी विधाओं में आधुनिकता को सेक्शुअल प्रेम की अभिव्यक्ति के लिए एक खुले विचार-क्षेत्र के रूप में देखा गया है। इसी के उलट परम्परा को एक ऐसी संस्थिति (साइट) के रूप में देखा जाता है जहाँ यौनिक प्रेम को समाज द्वारा अभिव्यक्ति की जगह नहीं मिलती, बल्कि उसे कई अलग-अलग तरीक़ों द्वारा दमित किया जाता है। ऐसा क्यों है कि इस निरूपण के बावजूद, रोज़मर्रा के जीवन में अपनी दमित यौन नी इच्छाओं की अभिव्यक्ति के लिए एक बहुत बड़ा तबक़ा 'परम्परागत' संस्थितियों पर ही निर्भर करता है।

आम तौर पर जिसे दैवी या धार्मिक संस्थिति कहा जाता है वह दमित यौनिकता के प्रकटीकरण की अहम संस्थिति बन जाती है। सुधीर कक्कड़ अपनी रचना *शमंस, मिस्टिक्स ऐंड डॉक्टरर्स* में इसका ज़िक्र करते हुए लिखते हैं :

> उपन्यास में देवी की मड़ी, रानी के लिए सिर्फ़ अपने बाँझपन का इलाज करने की संस्थिति ही नहीं बल्कि एक ऐसा प्रतीक भी है जहाँ वह अपनी देह तथा यौनिकता को अंतरलीन तल्लीनता के कुछ क्षणों में ऐसी जकड़नों से मुक्त कर देती है जो पितृसत्तात्मक व्यवस्था की देन हैं। इन क्षणों में मड़ी केवल एक दैवी या धार्मिक संस्थिति नहीं रहती बल्कि तथाकथित 'पथभ्रष्टता' की खुली अभिव्यक्ति का प्रतीक भी बन जाती है। पति के दुर्व्यवहार और 'बाँझपन' की वजह से समाज के हाशिये पर रहती हुई स्त्री अपने शरीर तथा मन की पीड़ा एवं यौन इच्छाओं को यहाँ आ कर अभिव्यक्त करती है। आधुनिकता की दृष्टि में यह पागलपन एवं उन्मादी व्यवहार हो सकता है जिसमें आधुनिक मनोचिकित्सा मानसिक विकृति देख सकती है।[32]

लेकिन प्रतीकात्मक तथा भौतिक रूप में मड़ी जैसी जगह किसी छोटे क़स्बे में स्थित होने की सम्भावनाएँ काफ़ी अधिक हैं। किसी नियोजित एवं आधुनिक शहर में मड़ी के लिए गुंजाइश काफ़ी कम थी। सवाल यह भी उठता है कि आधुनिक शहर ऐसी कौन सी संस्थितियाँ गढ़ता है जिनके द्वारा अवचेतन में छिपी इनसानी यौनिकता की अभिव्यक्ति हो पाये? क्या शहर के पास इस तरह के साधन हैं जिससे कि वह सब अभिव्यक्त किया जाए जिसकी अभिव्यक्ति रोज़ाना की ज़िंदगी में सम्भव नहीं

[32] वही.

हो पाती। यदि छोटे क़स्बे में ओमी अपनी यौन इच्छाओं को दबा–कुचला महसूस करता है तो शहर का 'खुलापन' इन्हें पूरा करने का एक नायाब वायदा भी करता है। शहरी जीवन में सिनेमा व सिनेमाघर ऐसी ही संस्थिति है जहाँ ओमी और उसके दोस्तों की रोमानी एवं यौनिक कल्पनाओं को स्पर्श मिलता है। लेकिन यह सवाल भी अत्यंत महत्त्वपूर्ण है कि क्या सिनेमा जैसी संस्थिति केवल 'अपनी शर्तों पर' उपलब्ध होती है या सिनेमा के होने की एवं समाज में इसकी स्वीकृति की कोई और वजहें भी हैं? पंचकुला जैसे क़स्बे में ओमी को सिनेमा देखने की इजाज़त नहीं थी। अपनी इस 'ख़्वाहिश' को उसे चोरी–छिपे पूरा करना पड़ता था। यहाँ उसके लिए सिनेमा अपनी ख़्वाहिशें पूरा करने के लिए हमेशा एक अतिक्रमित संस्थिति ही बना रहा। सिनेमा जैसी अतिक्रमित जगह पर जाने की वजह से ओमी को कई बार अपने पिता के हाथों पिटना पड़ा। इतनी ही नहीं, एक बार तो देर रात में चोरी–छुपे अकेले सिनेमा देखने जाते हुए वह हवालात में भी पहुँच जाता है। पचास और साठ के दशक की पृष्ठभूमि में लिखे गये इस उपन्यास में, उस दौर में किसी पुरुष के लिए देर रात अकेले सिनेमा देखने जाना, भ्रष्ट पुलिस व्यवस्था द्वारा उसका ऐसा 'अतिक्रामी' व्यवहार पैसा ऐंठने की वजह बन जाता है।

लेकिन नये शहर में सिनेमा के अर्थ न केवल ओमी के लिए बल्कि समाज के लिए भी बदल गये। शहरी आधुनिकता का आदर्श पूरा करने के लिए सिनेमा भी एक सामान्य ज़रूरत बन गया। इस अर्थ में सिनेमा आधुनिकता का ऐसा माध्यम बन गया जो नये शहर के भावी–नागरिकों को 'शहरी' बनने में मदद करता है। सिनेमा के माध्यम से 'आधुनिक' होने का 'प्रशिक्षण' ओढ़ने–पहनने से लेकर बोलचाल और उठने–बैठने के सलीक़े अपनाने द्वारा होता है। उपन्यास में सिनेमा द्वारा ओमी शहरी जीवन के लायक बनने का तर्क अपने पिता के सामने कुछ इस प्रकार रखता है :

> 'पिता जी, आपको अब मुझे अंग्रेज़ी फ़िल्में देखने देनी चाहिए,' ओमी ने कहा।
> अंग्रेज़ी फ़िल्में बगल के ही एक सिनेमाघर में दिखाई जाती थीं जो कि बढ़िया से सैक्टर 22 में स्थित था। यह ओमी का पसंदीदा सिनेमाघर था।
> 'अंग्रेज़ी फ़िल्मों में तो चुंबन और ऐसी ही और भी कई वाहियात चीज़ें दिखाई जाती हैं,' पास ही बैठी चतकरनी नामक ब्राह्मण विधवा बोली।
> 'हाँ', सत्या ने हामी भरी और कहा, 'अंग्रेज़ी फ़िल्में तो केवल बुरे काम दिखाने के लिए ही मशहूर हैं।'
> 'और तुम यह सब देखना चाहते हो? राम, राम, राम!', ओमी की माँ ने कान पकड़ते हुए कहा।
> 'नहीं बेटा! सभ्य घराने के सभ्य लड़कों के लिए यह सब देखना अच्छी बात नहीं,' ओमी के पिता खत्री बोले।
> उन्होंने सुन रखा था कि अंग्रेज़ी फ़िल्मों में अधनंगी औरतें दिखाई जाती हैं। अगर वे कपड़े पहने हुए भी होती हैं तो भी उनमें काफ़ी कुछ दिखाई पड़ता है।
> 'यह 1955 है पिताजी, कोई उन्नीसवीं शताब्दी नहीं। प्रोफ़ेसर भटनागर तो कहते हैं कि अंग्रेज़ी बोली सीखने के लिए ये फ़िल्में सबसे बेहतरीन तरीक़ा है। चाहे तो यह बात आप ख़ुद भी उनसे पूछ सकते हैं,' ओमी ने कहा।
> खत्री ने प्रोफ़ेसर भटनागर की राय ली।
> 'ओमी के लिए अंग्रेज़ लोगों द्वारा बोली जाने वाली अंग्रेज़ी सुनना काफ़ी मददगार साबित होगा,' प्रोफ़ेसर भटनागर ने कहा।
> उसी रविवार को खत्री ने ओमी को फ़िल्म देखने के लिए टिकट के पैसे दिये।[33]

[33] खन्ना : 130–131.

IV
जाति के आईने में शहर

शोध-लेख का यह भाग शहर के स्थानिक मानचित्र को जाति के आईने में उकेरने की एक कोशिश है। यदि ख़ुद को केवल शहर की आबादी के आँकड़ों तक को सीमित रखा जाए तो ऐसी कई ज़मीनी हक़ीक़तें छूट जाने की सम्भावना रहती है जिनके द्वारा शहर जाति को रचना करता है। शहरी स्पेस, सत्ता के विमर्श द्वारा जाति के ग़ैर-बराबरी विमर्शी रूपों को पैदा करने की जगह बनती है। आम तौर पर शहर की कल्पना अलग-अलग तरह के हाशियों से पूर्ण मुक्त या फिर इनसे मुक्त करवाने वाली जगह की तरह की गयी है। ऐसी ही कई कल्पनाएँ चण्डीगढ़ के बारे में भी की गयी हैं। लेकिन असल में शहर, उन सभी विविध ज़मीनों को ढँकने की जगह बनाता है जिनके द्वारा शहरी जीवन के प्रमुख आयामों की रचना होती है।

'मंकीमैन' की परिघटना को लेकर लिखा गया आदित्य निगम का लेख इसका एक उदाहरण है जिसमें वे दिल्ली के निम्न तथा निम्न-मध्यमवर्गीय मोहल्लों में एक रहस्यमय 'मंकीमैन' की गतिविधियों के क़िस्सों का विश्लेषण करते हैं।[34] निगम सामाजिक व अवधारणात्मक धरातलों का ज़िक्र करते हुए राज्य, नागरिक समाज तथा 'जनता' (जो कि सामुदायिक जीवन से जुड़ा है) के स्तर पर तीन सामाजिक / अवधारणात्मक धरातलों की परतों की बात कहते हैं। इन तीनों में से पहले दो आधुनिकता के विमर्श को जन्म देते हैं जबकि तीसरा उसे चुनौती देता है। पहले दो धरातल, मंकीमैन को 'ग़ैर-तार्किक' या 'वैज्ञानिक सोच के ख़िलाफ़' कहकर स्वयं को आधुनिकता के साथ जोड़ते हैं। इसी प्रक्रिया में ये तीसरे धरातल (जो कि 'जनता' का है) को 'ग़ैर-तार्किक' होने की तोहमत लगाकर 'ऐसी स्थितियों पर तार्किक तरीक़े से प्रतिक्रिया करने की शिक्षा लेने' पर ज़ोर देते हैं।[35] निगम कहते हैं कि, 'यह तीसरा धरातल वह है जहाँ कि छोटे तथा आमने-सामने रहने वाले समुदायों की कल्पना-शक्ति अभी भी काफ़ी प्रबल है तथा यह सबाल्टर्न बस्तियों की जीवन स्थितियों में रोज़ाना पुनः सम्पादित होती है,[36] निगम आगे लिखते हैं कि शहर में सबाल्टर्न मौजूदगी से निपटने के लिए यह 'जाग्रत' नागरिक वर्ग स्वयं को इस स्पेस से पृथक् कर लेता है तथा 'देहाती' व 'असंस्कृत' का नागरिक समाज में प्रवेश उसके स्वयं को 'सभ्य' में तब्दील करने की पूर्व-शर्त पर निर्भर करता है।[37]

इसी तर्क को आगे बढ़ाते हुए यह कहा जा सकता है कि दलित कर्त्ता को प्राक्-आधुनिक कह कर रेखांकित करना दरअसल सत्ता के एकाधिक आयामों द्वारा उसे अपने प्रश्न में जीतने तथा आधुनिक में बदलने की साजिश का हिस्सा है। एक आधुनिक शहर में दलित को जीतने, साधने तथा अनुशासित करने की यह प्रक्रिया आख़िर कैसे घटित होती है? दलित होने को 'अतार्किक' तथा 'आदिम' बता कर कैसे यह प्रक्रिया उसे बुद्धिवादी विचारों और आचरणों को मानने के लिए मजबूर करती है? अतार्किक तथा आदिम दलित को बाध्य कर दिया जाता है कि वह दलित होने की पहचान को त्याग दे तथा किन्हीं अन्य नयी पहचानों को अपनाये ताकि शहर में जीवन जीने के 'लायक' हो सके।

---

[34] निगम : 28–29.

[35] वही : 29.

[36] वही : 29.

[37] वही : 30.

इस प्रक्रिया को समझने के लिए *मोची दा पुत्त* (मोची का बेटा) नामक पंजाबी कहानी एक बढ़िया संदर्भ प्रदान करती है।[38]

आत्मकथा के लहजे में लिखी गयी यह कहानी लेखक के बचपन से शुरू होती है। पंजाब के एक गाँव में रहने वाले उसके पिता मोची का काम करते हैं। सदियों से ग्रामीण पंजाब में जाति पर आधारित अवमानना तथा अलगाव झेलते हुए उसके पुरखे इसी गाँव में रहते थे। अपने माता-पिता को लगातार 'उच्च-जाति' और जमींदार जाटों की प्रताड़ना सहन करते देखते हुए लेखक का बचपन गाँव में ही बीता। बाद में वह शहर आ गया :

> मुझे कॉलेज में पढ़ते हुए ही एक नौकरी मिल गयी। वह भी चण्डीगढ़ जैसे शहर में, क्योंकि मैं शहर में नया था इसलिए मुझे अपने लिए यहाँ एक घर तलाशने में काफ़ी मुश्किल हुई। तुम कहाँ से आये हो? कौन हो? तुम्हारी जाति क्या है? कितनी तनख़्वाह पाते हो? आख़िरकार किराये का एक मकान मिल ही गया। पड़ोस में चोपड़ा व जैन इत्यादि के घर थे। चोपड़ा मेरे बगल के घर में ही रहता था। एक दिन वह मुझसे मिलने आया। 'तो शर्माजी, कैसे हैं आप', उसने पूछा। 'मैं ठीक हूँ लेकिन आपने मेरे नाम के साथ शर्माजी क्यों लगाया?' मैंने उससे कहा। 'अरे नहीं! लेकिन मैं तो आपको शर्माजी ही कहूँगा', वह बोला। ख़ैर, मैंने इस बात को ज़्यादा तवज्जो नहीं दी और चोपड़ा मुस्कुराता हुआ चला गया।[39]

देहाती इलाक़ों में अलग-अलग भौगोलिक दायरे जाति के आधार पर क़ायम रखे जाते हैं इसी तरह शहरी इलाक़े में भी जाति उसके स्थानिक मानचित्र को अहम अभिव्यक्ति बनाती है। चण्डीगढ़ के आधुनिक शहरी इलाक़े में भी शहर पर दलितों का हक़ अस्पृश्यता की प्रच्छन्न और प्रत्यक्ष अभिव्यक्तियों के ज़रिये तय होता है। उच्च जाति के पड़ोसी द्वारा दलित को 'शर्माजी' कह कर सम्बोधित करना केवल इस बात का प्रमाण नहीं है कि मध्यवर्गीय शहरी मोहल्ले में दलितों का प्रवेश कई तरह से बाधित होता है, बल्कि दलितों को यह संकेत भी देता है कि उच्च जातियों के लिए इन इलाक़ों में रहना 'स्वाभाविक' है। इसके साथ ही यह भी कि यदि दलित इन इलाक़ों में बसने के लिए आते हैं तो उन्हें अपनी जातिगत पहचान ऐसे रूपों में बदलनी होगी जो कि उच्च जातियों को 'स्वीकार्य' हो।

उच्च-जाति का यह आख्यान उस समय गड़बड़ाया जब लेखक का पिता उसके साथ रहने के लिए गाँव से शहर आता है। जो पिता ख़ुद गाँव में मोची का काम करते थे, उनकी दोस्ती उस मध्यवर्गीय मोहल्ले की सड़क पर बैठने वाले मोची से हो जाती है। एक दिन पिता को घर लौटने में देरी हो जाती है। उन्हें ढूँढ़ने के लिए मोहल्ले के कई लोग जाते हैं तथा अंत में वह पड़ोस के मोची की दुकान पर हुक़्क़ा पीते हुए मिल जाते हैं।

> हमें यह देख कर काफ़ी शर्मिंदगी महसूस हुई। मेरे पड़ोसी चोपड़ा ने उनसे कहा, 'शर्माजी, शर्मा होने के बावजूद आप इन मोची-चमारों के साथ बैठकर हुक़्क़ा पी रहे हैं। अगर आपको हुक़्क़ा पीने का इतना ही शौक़ है तो वो हम आपको घर पर ला कर भी दे सकते हैं।'
>
> हम बापू को घर ले आये। 'यार, यह मोची जो चौक पर बैठता है, मुझे तो बहुत भला आदमी लगा। मेरठ का रहने वाला है। जब मैंने उसे तुम्हारे बारे में बताया तो वो काफ़ी हैरान था। वो तुम सब कोठियों वालों को जानता है। सोचता है कि तुम ब्राह्मण हो।' चोपड़ा दोबारा हमारे घर आया। उसके सामने मैं खुल कर कुछ भी न बोल पाया। सिर्फ़ इतना ही कह पाया, 'यहाँ लोगों के माथे पर थोड़े ही लिखा है कि कौन किस जाति से है?'

---

[38] यह कहानी मोहलनलाल फिलौरिया की है जो कि पंजाबी के प्रसिद्ध दलित लेखक हैं. नौकरी के दौरान वे कई साल चण्डीगढ़ में रहे. शोध के दौरान कई मुलाक़ातों में उन्होंने अपने तथा अपने दलित जानकार साथियों के अनेक ऐसे अनुभव साझा किये जहाँ उनके दलित होने को अलग-अलग तरीक़ों से ख़ारिज किया गया. शहर की गुमनामी ने लगातार यह दबाव क़ायम रखा कि दलित पहचान छोड़ कर 'शहरी' होने की दूसरी पहचानें तलाशी जाएँ. इस अर्थ में यह कहानी पूरी तरह से काल्पनिक नहीं, बल्कि दलित लेखक के विभिन्न अनुभवों पर आधारित एक कथानक है. देखें, मोहनलाल फिलौरिया (2007), *मोची दा पुत्त* (पंजाबी), तरलोचन पब्लिशर्स, चण्डीगढ़.

[39] वही : 7.

> चोपड़ा ने बोलना शुरू किया, 'बापू आप हुक़्क़ा पीने उस मोची के साथ बैठे थे। आपने हमें बता दिया होता। हम आपके लिए सिगरेट ले आते।'
> 'फिर क्या हुआ! वो भी हमारी बिरादरी से है। जब से मैं यहाँ आया हूँ तब से मैं उससे मिलने और उसके पास समय बिताने जाता हूँ। वह मेरा बहुत ख़याल रखता है। एक बार तो उसने मुझे दारू भी पिलाई थी। वो बहुत ही बढ़िया आदमी है।'
> मुझे अब और सहन नहीं हो पा रहा था मेरे पड़ोसियों को मेरे चमार होने का राज़ पता चल गया था। 'बापूजी यह शहर है, गाँव नहीं। कम से कम यहाँ मेरे ओहदे का तो ख़याल करिये। कल से आप उस मोची के साथ हुक़्क़ा नहीं पिएँगे।'
> जैसे ही मैंने यह शब्द कहे, मेरे पिता गुस्से से आग बबूला हो गये।
> 'ओए ज़रा मेरी बात सुन, किताबी कीड़े! मेरे कपड़े लाओ, मैं यहाँ अब एक पल भी नहीं ठहरने वाला। तुम्हें अपनी औक़ात भूल गयी... कि तुम भी एक मोची के बेटे हो... ऊपर से तुम मुझे बता रहे हो कि मैं किसी मोची के साथ हुक़्क़ा नहीं पी सकता। भाड़ में जाए तुम्हारी पढ़ाई-लिखाई और तुम्हारी नौकरी।'
> बापू को समझाना बहुत मुश्किल था। बड़ी ही मुश्किल से हम उन्हें शांत कर पाये। हमारे पड़ोसी यह सब होने के बाद भी हमसे रोज़ाना दुआ-सलाम करते रहे, लेकिन उन्होंने धीरे-धीरे हमसे दूरियाँ बना लीं। हमारा आपसी लेन-देन लगभग ख़त्म हो गया। छोटी-छोटी चीज़ें जैसे एक-दूसरे घर में दाल-सब्ज़ी देना-लेना भी अब पूरी तरह बंद हो गया।

शहरी माहौल में उच्च जातियों द्वारा दलित पहचान की कमतरी के ख़िलाफ़ पिता की आवाज़ विद्रोह का एक आख्यान बन जाती है। यह कमतरी शहरी माहौल में कई रूप लेती है जिनमें से एक दलितों द्वारा रोज़मर्रा की अवमानना की वजह से ऊँचे जाति सूचक उपनामों का इस्तेमाल करना भी है। अवमानना का यह डर दलित होने के असल परिणामों के ख़ामियाजे पर आधारित है। चण्डीगढ़ के दलित-आख्यान को ध्यान से सुनें तो यह कहानी अपनी कथावस्तु से कहीं आगे की बात कहती है। ऐसे ही एक आख्यान में एक मध्यवर्गीय घरेलू प्रकाश महमी नामक दलित स्त्री शहर में अपने दलित होने के अनुभव को कुछ इस तरह बयान करती है :

> मुझे याद है कि हम 1975-76 के दौरान इस शहर में आये थे। उन दिनों में लोग छुआछूत मानते थे। अब हम खुले तौर पर रह रहे हैं और अब वैसा कुछ भी नहीं है। लोग अब हमारे सामने कुछ नहीं कहते, बल्कि पीठ पीछे बातें करते हैं। जब हम यहाँ किरायेदार की तरह रहने आये थे तो उस वक़्त मकान मालिक हमारी जाति के लोगों को थोड़ा अरुचि के साथ देखते थे। मैं कह नहीं सकती कि वे ही इस तरह व्यवहार करते थे या हमारे मन में उनके प्रति इस तरह की भावना आती थी। मुझे लगता था कि अगर मैंने अपनी जाति के बारे में बता दिया तो वे हमारे बारे में पता नहीं क्या-क्या सोचेंगे। हम एक खत्री परिवार के घर में किराये पर रहते थे। वे हमारे साथ बहुत अच्छा व्यवहार करते थे। हालाँकि जब बात जाति पर आती थी तो वे हमारी जाति पूछते हुए कहते थे, 'क्या आप बनिया हैं?' एक बार मुझे जवाब में कहना ही पड़ा कि हम बनिया जाति से हैं। लेकिन यह बात मुझे कुछ हज़म नहीं हुई और मैं इसे लेकर काफ़ी परेशान थी। मैं इसके बारे में अक्सर सोचती और मुझे ख़ुद के बारे में काफ़ी बुरा महसूस होता। लेकिन हम वहाँ किरायेदारों की हैसियत से रहते थे। मैंने तब ख़ुद से कहा था कि जब हमारा ख़ुद का घर होगा तो हम कभी भी अपनी जाति को लेकर झूठ नहीं बोलेंगे... कभी अपनी जाति नहीं छुपाएँगे... चाहे कुछ भी हो जाए। 1977 में हमारा ख़ुद का घर हो गया। यहाँ सभी जातियों के लोग रहते हैं : खत्री, ब्राह्मण, जाट... सभी हैं। किसी ने कभी भी हमारे साथ कोई ख़ास भेदभाव नहीं किया क्योंकि मैं शुरू में ही सबको बता देती हूँ कि मैं एक शेड्यूल्ड कास्ट स्त्री हूँ, हम एस.सी. हैं। अगर आप हमारे साथ सामाजिक संबंध रखना चाहते हैं तो ठीक है, यदि नहीं भी रखना चाहते तो कोई फ़र्क़ नहीं पड़ता। जब उन्हें मेरी जाति के बारे में पता चलता है तो उनमें से कुछ मेरी पीठ के पीछे बातें करते हैं लेकिन मेरे सामने किसी की कुछ भी कहने की हिम्मत नहीं पड़ती।[40]

भौगोलिक स्पेस पर उच्च जातियों की पारम्परिक मिल्कियत की वजह से ऊँची जातियों को अधिकार मिल जाता है कि दलितों को स्पेस मुहैया न कराया जाए। लेकिन बहुत बार भौगोलिक स्पेस

---

[40] प्रकाश महमी से 21 सितम्बर 2007 को हुई बातचीत से.

पर दलितों की मिल्कियत भी उन्हें जाति पर आधारित अवमानना के ख़िलाफ़ संरक्षण की गारंटी नहीं दे पाती। दरअसल, अवमानना के ये मौक़े लगातार आते रहते हैं। ऊँची जातियों का विमर्श है ही ऐसा। मसलन साफ़-सफ़ाई के बारे में जैसे ही बात होती है, अवमानना की नौबत दिखने लगती है।

प्रकाश महमी आगे बताती हैं :

कई बार मैंने औरतों को मेरी जाति के बारे में बात करते हुए पकड़ा है लेकिन मुझे देखते ही वे चुप हो जाती हैं। उन्हें मुझसे डर भी लगता है, क्योंकि मैं यह सब सहन नहीं करती। हमारे पड़ोस में एक महिला रहती थी और हमारे बच्चे आपस में मिल कर खेलते थे। किसी बात पर अपनी बेटियों को डाँटते हुए वह अक्सर कहती, 'तुम चूहड़े-चमारों के बच्चों जैसे व्यवहार क्यों करते हो?' फिर मेरी उस औरत से तनातनी होती और मैं कहती, 'अगर तुम चूहड़े-चमारों के बारे में ऐसे बात करोगी तो किसी दिन चूहड़े-चमार ही तुम्हारी बेटियों को फुसला कर ले जाएँगे, जैसे वे टेढ़ी भाषा में हमारे बारे में बात करते थे वैसे ही मैं भी उनको टेढ़ी भाषा में जवाब देती ताकि उन्हें भी पता चले। इसी तरह हमारे पड़ोस में एक पंडित (ब्राह्मण) परिवार रहता था। कई बार वे पुराने ज़माने की बात करते हुए कहते कि पुराने दिनों में ये लोग गंदे रहते थे और कई-कई दिनों तक नहाते तक नहीं थे।

अंत में...

अंत में यह कहना ज़रूरी है कि नेहरूवादी आधुनिकता के दौर में चलाई गयी राष्ट्र-निर्माण की परियोजना को एक बड़े फ़लक पर देखना-समझना इसके अध्ययन का एक अहम पहलू है, पर इसी के साथ इस प्रोजेक्ट को जन-जीवन के उन छोटे-छोटे निहायत अंतरंग और रोज़मर्रा के आईनों में भी देखा जाना चाहिए जिनमें इस आधुनिकता की वज़ह से बेचैनियों और उथल-पुथल के अक्स दर्ज हुए। नेहरूवादी आधुनिकता ने जहाँ राष्ट्र के मानचित्र पर बड़े बाँधों और नये शहरों को टाँका, वहीं उसने आधुनिक राष्ट्र के 'नागरिकों' के जीवन के नितांत निजी आयामों को भी गहराई से स्पर्श किया। इसी के परिणामस्वरूप ये 'नागरिक' चाहे-अनचाहे अपने निजी जीवन को नये राष्ट्र के नये सपनों की माँगों के हिसाब से तब्दील करने पर मजबूर हुए। 'आधुनिक' राष्ट्र-निर्माण की इस प्रक्रिया में राज्य और उसकी संस्थाओं द्वारा अलग-अलग तरीक़ों से 'नये' नागरिक का उदय बड़े चाव से रेखांकित किया गया। लेकिन इसी के साथ यही राज्य इस नागरिक के कंधों पर पड़ी राष्ट्र की भारी-भरकम आधुनिकता ढोने की बोझिल ज़िम्मेदारी को मान्यता देने से इनकार करता रहा, बावजूद इसके कि इस मान्यता की पूर्व-शर्त के तहत ही यह नागरिक नये राष्ट्र और नये शहर द्वारा अपनाया जा सकता था।

संदर्भ

आदित्य निगम (2002), 'थियेटर ऑफ़ द अरबन : द स्ट्रेंज केस ऑफ़ मंकीमैन', *सराय रीडर 02,* 'द सिटीज़ ऑफ़ ऐवरी डे लाइफ़', *सराय : द न्यू मीडिया इनीशिएटिव,* दिल्ली.

कश्मीरी लाल ज़ाकिर (1996), *मेरा शहर अधूरा सा,* जनवाणी प्रकाशन, नयी दिल्ली.कश्मीरी लाल ज़ाकिर (1980), *एक शहर, एक महबूबा,* स्टार पब्लिकेशन, नयी दिल्ली : 2.

बलराज खन्ना (1984), *नेशन ऑफ़ फूल्ज़ : सीन्स फ्रॉम इंडियन लाइफ़,* माइकल जोजफ़, लंदन.

मोहनलाल फिलौरिया (2007), *मोची दा पुत्त* (पंजाबी), तरलोचन पब्लिशर्स, चण्डीगढ़.

रवि कालिया (1987), *चण्डीगढ़ : द मेकिंग ऑफ़ ऐन अरबन सिटी,* ऑक्सफ़र्ड युनिवर्सिटी प्रेस, नयी दिल्ली.

शर्मा व अन्य (1999), *चण्डीगढ़ लाइफ़स्केप्स : ब्रीफ़ सोशल हिस्ट्री ऑफ़ ए प्लैंड सिटी,* चण्डीगढ़ प्रशासन, चण्डीगढ़.

सुनील खिलनानी (2001), *भारतनामा (द आइडिया ऑफ़ इण्डिया),* अंग्रेज़ी से अनुवाद : अभय कुमार दुबे, राजकमल प्रकाशन, नयी दिल्ली.

हेरल्ड एल्विन (1957), *द राइड टू चण्डीगढ़,* मैकमिलन, न्यूयॉर्क.